International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 10, Issue 02, February 2023
Website- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

पर्यावरणीयनीति : व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य

Dr Sipu Jayswal, Associate Professor
Janki Devi Memorial College, University of Delhi
Sir Ganga Ram Hospital Marg, Old Rajinder Nagar, New Delhi-110060

साधारण शब्दों में जीव एवं जगत् के पारिस्थिकी तंत्र में जो कुछ भी निहित है, उसके सम्पूर्ण स्वरूप को पर्यावरण कहते हैं। परन्तु दार्शनिक शब्दावली में पर्यावरण का एक विशेष अर्थ है। आज के सन्दर्भ में जब पर्यावरण की समस्या का समाधान मानवीय दायित्वों के द्वारा सोचा जाए, तो पर्यावरण अपने विशेष अर्थ में अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। इस जगत् में मानव सबसे अधिक जिस विषय पर विचार करता है, वह है, उसके अपने अस्तित्व की सुरक्षा तथा अन्य के प्रति अपनी भूमिका निश्चित करना, क्योंकि अपने लक्ष्य की प्राप्ति में उसे इस जगत् तथा अन्य प्राणियों से सहयोग की अपेक्षा होती है। यही सहयोग एवं अपेक्षा की भावना उसे अन्य के प्रति उत्तरदायी भी बनाती है।

बौद्ध दर्शन के अनुसार व्यक्ति अन्य के प्रति अपनी भूमिका तभी निर्धारित कर सकता है या निष्पक्ष होकर विचार कर सकता है, जब वह 'मम' और 'अहम' के घेरे से बाहर निकल कर सोचे। उसकी यह सोच मानवीय गुणों की, उसकी मौलिकता की, सद्भाव की तथा बुद्धि की असीमित क्षमताओं की ओर होनी चाहिए । जहाँ चित्त को सभी विकारों से मुक्त किया जा सके। मानवीय पर्यावरण के संबंध में कठिनाई का मुख्य कारण क्षण – प्रतिक्षण बदलते परिवेश में अर्थात् इस प्रवाह्यमान व परिवर्तनशील जगत् में सम्भवतः मनुष्य का स्वयं व अन्य के प्रति कोई स्थिर धर्म तय नहीं कर पाना है। ऐसा स्थिर धर्म जिसमें रहकर व्यक्ति प्रतिकूल को अप्रतिकूल बना सकता हो । बौद्ध दर्शन में जगत् की निस्सारता को बताने का मुख्य कारण मम् व अहम् की परिधि से बाहर निकलकर जीव व जगत् के प्रति एक निष्पक्ष व स्वार्थरहित दृष्टिकोण अपनाना है। इसलिए वैयक्तिक 'आत्म' का निषेध कर 'एकात्मभाव' की प्रतिष्ठा बौद्ध दर्शन में की गई है। इस प्रकार जगत् की निस्सारता और क्षणिकता से उत्पन्न दुःख, उदासी व निराशा के निदान का सबसे उत्तम उपचार प्रेम, दया, करुणा, क्षमा, दानशीलता के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों का कल्याण करना है।

मानव के विकास में जिस प्रकार वाह्य पर्यावरण जैसे जल, वायु, भोजन, वस्त्र, आवास आदि महत्वपूर्ण हैं, उसी प्रकार मानव के आन्तरिक विकास में दया, करुणा, प्रेम आदि नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य भी महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि मानवीय धर्म

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

के सन्दर्भ में नैतिक न्याय हर समाज, देश व संस्कृति में सामान्यतः एक समान है। जब तक मानवीय संरचना का आन्तरिक स्वरूप नहीं बदलता, तब तक नैतिक सद्गुणों की बौद्ध परंपरा पूरे विश्व के लिए एक समान महत्व रखेगी। पर्यावरण के संदर्भ में यह तथ्य और भी सार्थक है, क्योंकि उपरोक्त वर्णित मानवीय गुण व धर्म, मानव के विकास व संरक्षण में तब तक समान महत्व रखेंगे। जब तक मानव को जीवित रखने वाले, ये तथ्य पूरे विश्व के लिए समान रूप से उपयोगी होंगे। जहाँ कहीं भी इन तत्वों में व इन नैतिक मान्यताओं में कमी आई है, वहीं वातावरण दूषित हुआ है। उसका पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ा है, साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक व प्राकृतिक विक्षोभ भी उत्पन्न हुआ है।

अन्तरवैयक्तिक संबंधों में जो दूषण है, वह कई रूप में सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। छल–कपट, अविश्वास, हिंसा, स्वार्थपरता, कामुकता, अहंमन्यता आदि इस दूषण के कारण हैं, जिसके परिणामस्वरूप आज समाज व देश को ऐसे भयंकर दूषणों का सामना करना पड़ रहा है, जिसका निदान सिर्फ मानसिक व चैतसिक शुद्धता पर निर्भर करता है। तभी एक स्वस्थ वातावरण में मनुष्य अपना विकास कर पाएगा और अपनी मौलिकता को बचाए रख पायेगा ।

अरस्तू ने अपने नोति दर्शन में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त "मानवता की साध्यता के संदर्भ में दिया गया है। जिसमें मानव को ही साध्य मान कर आचरण करने की शिक्षा दी गई है। जिससे मानव के नैतिक गुण विकसित हो सकें और अन्तर वैयक्तिक संबंध स्वस्थ हो सकें। परन्तु आज समाज में व्यक्ति का मशीनीकरण हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अन्य को साधन की तरह उपयोग में लाने के लिए प्रयासरत् है। जिसके कारण मानवीय मूल्यों का हास हो रहा है, स्वार्थपरता बढ़ रही है, आपसी विश्वास घट रहा है, जो किसी भी संबंध का मौलिक आधार है। आज रिश्ते–नाते आदि लेन–देन अथवा लाभ की कसौटी पर रख कर तय किये जाते हैं। जिस कारण आज रिश्तों में समर्पण एवं त्याग का भाव कम हुआ है और व्यापारीकरण बढ़ा है, जिससे संबंधों में स्नेह, श्रद्धा. आस्था, प्रेम आदि का अभाव होता जा रहा है।

त्योहार, जो अन्तरवैयक्तिक संबंधों की दृढ़ता का एक महत्वपर्ण माध्यम थे, उनका स्वरूप भी आज बदल रहा है। त्योहारों का महत्व आज के औद्योगिक युग की भाग–दौड़ में घटता जा रहा है। जो भाईचारे को बढ़ाने से रोकता है। आज त्योहार के नाम पर व्यापारिक दृष्टिकोण से मातृ–दिवस, पितृ–दिवस आदि मनाया जाता है। जो इस बात का प्रमाण है कि मातृ–पितृ मूल्य आज वर्ष के एक दिवस में ही सीमित हो गया है। यह माता–पिता से बढ़ती दूरी का परिणाम है। परिवार का विघटन इसका एक अन्य विकार है। सुदृढ़ संबंधों के अभाव में व्यक्ति अपनी पहचान खो रहा है। बढ़ती जनसंख्या में व्यक्ति वैसे भी बाढ़ की तरह अभिशाप हो गया है। उस पर उसकी गौण होती पहचान अन्तरवैयक्तिक संबंधों को और भी ढीला करती जा रही है। जिससे अकेलापन, तनाव और अनेक प्रकार की मानसिक पीड़ा का उदय हो रहा है।

कामुकता के कारण आज 'स्त्री–पुरुष' के संबंधों में आश्चर्यजनक रूप से विकृति आई है। स्वस्थ व स्वच्छ सहवास जो कि 'सृष्टि सृजन' का साधन है, आज रोगग्रस्त हो गया है। 'एड्स' जैसी बीमारी जानलेवा तो है ही, साथ ही अन्तरवैयक्तिक संबंधों की मूल्यहीनता का परिचायक भी है। आज 'काम' की तृप्ति का साधन मात्र स्त्री–पुरुष संबंध ही नहीं रहा बल्कि अन्य

कृत्रिम संबंधों का भी उदय इस संदर्भ में हुआ है। जैसेः– समलैंगिकता, उभयलैंगिकता विषमलैंगिकता आदि। जो शारीरिक अस्वस्थता का कारण तो हैं ही साथ ही नैतिक मूल्यों के पतन का भी कारण हैं। विनय पिटक में कामासक्ति के लिए जो नियम बनाए गए हैं उनमें कृत्रिम मैथुन के संदभ में कई दोषों का वर्णन किया गया है। इन नियमों में पशु या किसी भी कृ त्रिम यौनाचार के लिए पाराजिक दोष[1] लगता है।

अन्तरवैयिक्तक संबंधों के इन दूषणों की शुचिता के लिए बौद्ध दर्शन में 'चैतसिक' विशुद्धि पर बल दिया गया है। मनुष्य की प्रवृत्ति जिसके ये दुष्परिणाम हैं उनको शुद्धता प्रदान करने के लिए ही बौद्ध आचारशास्त्र में समान चैतसिक गुणों की विस्तृत व्याख्या की गई है। जो संक्षेप में इस प्रकार हैं :– बौद्ध दर्शन में व्यक्ति के छः प्रकार के चरित्र का वर्णन मिलता है, जिसे 'चर्या' कहते हैं। राग, द्वेष, मोह, श्रद्धा, बुद्धि और वितर्क ये छः चर्या हैं। इन चर्याओं के कम या अधिक्य के कारण मनुष्य की प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न होती है और उसका व्यवहार भिन्न–भिन्न प्रकार से विक्षिप्त होता है। 'मंघिय सुत्त' में भगवान् बुद्ध कहते हैं, इन दोषों के नाश के लिए चार प्रकार की भावना करनी चाहिए। राग के नाश क लिए अशुभ की भावना, हिंसा के नाश के लिए मैत्री की भावना, वितर्क के लिए अनापान स्मृति की भावना, और अहंकार – मम्कार के नाश के लिए अनित्य की भावना, इसके लिए भगवान् के अनुसार वचन मात्र में अभिनिवेश न रखकर सब जगह अभिप्राय की खोज करनी चाहिए।[2]" उपरोक्त मंतव्य के अनुसार व्यक्ति के चित्त का दोषयुक्त होना दूसरों के साथ उसके संबंधों की दृढ़ता व शुद्धता के लिए आवश्यक है। बौद्ध दर्शन में कुशलचित्त की एकाग्रता को ही लौकिक समाधि कहा गया है, अर्थात् चित्त की वह एकाग्रता जो दोषरहित और सुखमय हो ।

पर्यावरण के आध्यात्मिक संदर्भ में अन्तरवैयक्तिक संबंधों की विशेष भूमिका है; क्योंकि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समाज अन्ततः संबंधों का ही जाल है। अतः सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण व्यक्तियों के आपसी संबंधों पर ही निर्भर हैं। बौद्ध दर्शन में इस विषय पर सविस्तार विचार किया गया ह, जातक कालीन समाज में बौद्ध आचार तत्व की व्याख्या इन्हीं संबंधों की शुद्धता को ध्यान में रखकर की गई है। जिसमें व्यक्ति के मध्य मानवीय संबंधों को दृढ़ता व विशुद्धि प्रदान करने वाले तत्व, दया, करुणा, प्रेम, अहिंसा, नम्रता, स्वार्थत्याग आदि अपनी स्वाभाविक सीमा का उल्लंघन कर प्राणी के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जिसकी प्रासांगिकता व उपयोगिता की निरंतरता बनी हुई है। कारण यह कि मिथकों की प्रवृत्ति बहुत कुछ गणितीय प्रमेयों की भाँति होती है, जिस प्रकार गणित में एक ही 'सूत्र' पर रखकर कई उदाहरणों को सिद्ध किया जा सकता है, उसी प्रकार किसी मिथक में दी गई शिक्षा या उपदेश के आधार पर कई उदाहरणों को रखा जा सकता है और उसे प्रमाणित किया जा सकता है।

इस प्रकार व्यवहारिक सफलता का आदर्श ही जातक साहित्य की सबसे बड़ी देन है, जिसमें एक ओर दया– करुणा आदि उपरोक्त वर्णित तथ्यों की महत्वता की व्याख्या की गई है, तो दूसरी ओर लोभ, द्वेष, काम, मोह, कृतघ्नता आदि के दुष्परिणाम भी स्थल – स्थल पर देखने को मिलते हैं। इस प्रकार मानवीय संबंधों के मध्य व्याप्त क्लेशों को दूर करने के लिए जातकों

[1]यो पन भिक्खु भिक्खून सिक्खासाजीवसमापन्नो सिक्खं अपच्चक्खाय दुष्बल्यं अनाविकत्वा मेथुनं धम्मं परिसेवेय्य अन्तमसी तिरच्छानगताय पि, पाराजिक होति असंवासो।। पाराजिक धम्मा, भिक्खु पातिमोक्ख, (सं.) स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, प्रयाग, बौद्ध भारती प्रकाशन, 1981, पृ. 4.

[2] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (प्रथम खण्ड हिन्दी अनुवाद) सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वाराणसी : बौद्ध भारती प्रकाशन, 1998, पृ. 34.

के उदाहरण को अनुलोम और प्रतिलोम दोनों ही तरह से देखा जा सकता है। इसके अलावा त्याग, अपरिग्रह, दान, शत्रुप्रेम, क्षमा, मैत्री, एकता आदि आदर्शों की चरम सीमा को छूते हुए जातकों को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

त्यागः– त्याग के सन्दर्भ में 'राजा शिवि"[3] का उदाहरण सर्वश्रेष्ठ है। वैसा त्याग जो न केवल प्राणियों के कल्याण के लिए है, बल्कि व्यक्तियों के आपसी संबंधों की दृढ़ता व विशुद्धि के लिए भी है जिसके मूल में अपरिग्रह की भावना है। 'राजा कन्ह"[4]की कथा में सर्वस्व दान देकर हिमालय पर निवास करने वाले राजा कन्ह को इन्द्र ने जब अपना मनचाहा वरदान माँगने को कहा तो उन्होंने 'आत्मशांति' अर्थात् घृणा, इच्छा एवं वासनाओं से मुक्ति माँगी, साथ ही सम्पूर्ण प्राणी जगत् के मानसिक एवं शारीरिक हानि से रहित होने का वरदान माँगा ।

प्रेम– शत्रु के प्रति प्रेम का आदर्श 'राजोवाद जातक'[5] में काशी नरेश ने उपस्थित किया है। कौशल नरेश और काशी नरेश अपने–अपने राज्य से बाहर भ्रमण के लिए निकले, एक संकुचित मार्ग में दोनों आमने–सामने आकर रुक गए, जिससे मार्ग अवरुद्ध हो गया, कौशल नरेश की प्रशंसा करते हुए उनके सारथी ने कहा, हमारे राजा मित्र का मित्रता से, शत्रु का शत्रुता से स्वागत करते हैं। प्रति उत्तर में काशी नरेश के सारथी ने कहा हमारे राजा क्रोध का क्षमा से शत्रु का मित्रता से तथा लोभ का उदारता से उपचार करते हैं। यह सुन कौशल नरेश ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली, और काशी नरेश को पहले रास्ता दे दिया।

क्षमाः– 'खन्दीवादी जातक'[6] नाम की कथा बौद्ध परंपरा की क्षमा के लिए मौलिक उदाहरण है। इसमें बोधिसत्त्व क्षमा का आदर्श उपस्थित करते हैं। एक राजा ने क्रोध में भरकर बोधिसत्त्व के अंग–अंग कटवा दिए, परन्तु बोधिसत्त्व ने सब कुछ धैर्य के साथ सहते हुए उस राजा को क्षमा कर दिया और किया मन में किसी प्रकार की प्रतिशोध की भावना नहीं आने दी।

उपरोक्त वर्णित मूल्यों का ही आज पतन हुआ है जिसके कारण काम, लोभ, –तघ्नता आदि अशुभ कर्मों से समाज दूषित होता जा रहा है। जातक साहित्य में अनेक स्थलों पर लोभ का दुष्परिणाम व्यक्त किया गया है। "लोभवश ब्राह्मणी स्वर्ण पंख देने वाले हंस के समस्त पंख एक साथ उखाड़ लेती है, और वे स्वर्ण पंख न रह कर साधारण पंख की तरह रह जाते हैं।"[7] इस प्रकार जिह्वा लोलुपता को सदैव निंदनीय माना गया है। इसी प्रकार काम के दुष्परिणाम को 'काम विलाप जातक'[8] में दिखाया गया है, जिसमें सूली पर चढ़े व्यक्ति को अपनी कोई चिंता नहीं केवल पत्नी की चिंता है।' विनय पिटक"[9] में भी भगवान् बुद्ध ने काम के दुष्परिणाम को जानते हुए भिक्षुओं के लिए काम से विरत रहने के नियम बताये हैं।

[3] *जातक,* (चतुर्थ खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 499, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1982, पृ. 609.
[4] *जातक,* (चतुर्थ खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 440, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1982, पृ. 207.
[5] *जातक,* (द्वितीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 151, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1985, पृ. 153.
[6] *जातक,* (तृतीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 313, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1971, पृ. 208.
[7] सुवण्णहंस *जातक, जातक* (द्वितीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 136, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1985, पृ. 99.
[8] *जातक,* (तृतीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 297 भदन्त आनन्द कौसल्यायन प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1971, पृ. 163.
[9] यह भिक्षुओं का विनय सम्बन्धी ग्रन्थ है।

कृतज्ञता और कृतघ्नता के संबंध में भी अनेक कथाएं जातकों में आयी हैं, अम्ब जातक"[10] में प्यास से व्याकुल पशुओं को जल पिलाने वाले तपस्वी को पशु–पक्षी इतने फल लाकर देते हैं कि पाँच सौ तपस्वी उससे क्षुधा तृप्ति कर लेते हैं। बहुभाषिता ओर मिथ्या भाषा को "तितर जातक'[11] में वाचाल तपस्वी और तीतर को बहुभाषिता के कारण अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। 'पदुमजा जातक'[12] में श्रेष्ठि पुत्रों को नकटे की मिथ्या प्रशंसा करके कमल लेने की इच्छा से हाथ धोना पड़ा। नकटे ने यथार्थ वक्ता को ही कमल दिए भाग्यवाद की उपेक्षा भी जातक में की गई है और पुरुषार्थ को महत्व दिया गया है। 'नक्खत जातक'[13] में कहा गया है कि नक्षत्र देखने वाले व्यक्ति का काम नष्ट होता है। 'मंगला जातक'[14] में कहा गया है कि बुद्धिमान व्यक्ति को शगुन मानने वाला नहीं होना चाहिए। जातकों में सर्वत्र ही ग्रह गणना, शकुन विचार, नक्षत्र विचार, भाग्यवाद आदि को मूर्खों का आधार माना गया है और पुरुषार्थ की प्रशंसा की गई है। 'महासीलव जातक'[15] में कहा गया है– 'पुरुष आशा लगाए रखें। बुद्धिमान व्यक्ति कभी निराश न हों, प्रयत्नरत् रहना पुरुष का कर्त्तव्य है, फल तो प्राप्त होगा ही। उपरोक्त तथ्यों से व्यक्ति के वे चारित्रिक गुण जिससे वह संबंधों का स्वस्थ विकास कर सकता है तथा वे हीन भावनाएं जिससे उसका अन्य के प्रति सम्बन्ध क्षीण होता है आदि की व्यावहारिक परिचय मिलता है। जिसे व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से दृढ़ कर सकता है और इन गुणों के विकास करने में तथा हीनता का त्याग करने से अन्तरवक्तिक संबंधों की परिशुद्धि होती है।

'ब्रह्म विहार' की महत्वता बौद्ध दर्शन में बताई गई है। मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के संदर्भ में भगवान् बुद्ध ने कहा है कि व्यक्ति यदि बचपन से ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा चित्तविमुक्ति की भावना करे तो पापकर्म नहीं होगा और यदि वह पाप नहीं करेगा तो फिर उसे दुख नहीं भोगना पड़ेगा, ये ब्रह्म विहार चित्त परिशुद्धि के उत्तम उपाय हैं, और जीवन का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करते हैं। जब कोई सम्पूर्ण प्राणियों से बैर भाव से दूर रहकर करुणा भाव धारण करता है और उल्लासित होता हुआ निर्विकार भाव से विचरण करता है, तो स्वतः ही समस्त क्लेशों का अंत हो जाता है। जीवों के प्रति किस प्रकार का सम्यक् व्यवहार करना चाहिए इसका भी यह निर्देशन करता है। जो साधक इन चार ब्रह्म विहारों की भावना करता है, उसकी सम्यक् प्रतिपति होती है, वह सब प्राणियों के हित एवं सुख की कामना करता है। वह दूसरों के दुखों को दूर करने की चेष्टा करता है उनसे ईर्ष्या नहीं करता है तथा सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखता है। संक्षेप में इन चार भावनाओं के द्वारा राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि चित्त के मलों का क्षालन होता है। "योग के अन्य परिकर्म केवल आत्महित के साधन हैं किन्तुयह चार ब्रह्म विहार परहित के भी साधन हैं। "

जीवों के प्रति कुशलचित्त की चार वृत्तियाँ होती है। (1) दूसरों का हित साधन करना। (2) उसके दुख का अपनयन करना। (3) उसकी सम्पन्न अवस्था को देखकर प्रसन्न होना । (4) प्राणियों के प्रति पक्षपात रहित व समदर्शी होना। मानवीय संबंधों

[10] *जातक,* (द्वितीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 124, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1985, पृ. 62.
[11] *जातक,* (द्वितीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 117, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1985, पृ. 36.
[12] *जातक,* (तृतीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 3, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1971, पृ. 47.
[13] *जातक,* (प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 49, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941, पृ. 380.
[14] *जातक,* (प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 87, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941, पृ. 526
[15] *जातक,* (प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 51, भदन्त आनन्द कौसल्यायन प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941, पृ. 387.

की विशुद्धि का चिंतन करने वाले को पहले मैत्री भावना द्वारा जीवों का हित करना चाहिए, तदन्तर दुख से अभिभूत जीवों की प्रार्थना सुनकर करुणा भावना द्वारा उसके दुःख का अपनयन करना चाहिए, इस क्रम में पहले एक आवास के जीवों के प्रति अर्थात् सीमा के अंदर रहने वाले व्यक्ति सुखी हों, उसका कोई व्यापद न करें, इस प्रकार क्रमशः एक ग्राम, एक राज्य, एक देश, एक समुदाय, तथा संम्पूर्ण प्राणियों के प्रति भावना करनी चाहिए, ये चारों ब्रह्मबिहार समानरूप से ज्ञान और सुगति देने वाले हैं। मैत्री भावना का विशेष कार्य द्वेष का प्रतिघात करना है, करुणा का विशेषकार्य हिंसा का प्रतिघात करना है, मुदिता का कार्य अप्रीति का नाश करना है, आर उपेक्षा का कार्य राग को नष्ट करना है, ये ब्रह्मबिहार व्यक्ति के व्यवहार के आदर्श के रूप में किस कार एक स्वस्थ सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करते हैं, इसे जातकों के माध्यम से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

मैत्री :– जीवों के प्रति स्नेह और सहृदयता ही मैत्री है, जिसकी प्रवृत्ति परहित साधना है, जीवों का उपकार करना, उसके सुख की कामना करना, द्वेष और द्रोह का परित्याग इसके लक्षण हैं। मैत्री की उत्पत्ति शील आदि गुणों के द्वारा होती है । मैत्री की भावना में द्वेष का नाश एवं क्षान्ति (क्षमा) की प्राप्ति होती है। द्वेष के वशीभूत चित्तवाला जीव, हिंसा भी करता है।[16,] मैत्री भावना में सभी सत्व और बैर रहित हों, हानि रहित हों, अशान्ति रहित हों, सुखपूर्वक हों जिससे सभी प्राणी, सभी भूत, सभी पुद्गल, सभी व्यक्ति बैररहित हों, हानि रहित हों, अशन्ति रहित हों, सुखपूर्वक जिये[17] आदि बताया गया है, भगवान् बुद्ध ने स्वयं कहा है, 'जिस प्रकार स्वयं से बढ़कर प्रिय किसी को नहीं पाया, इसी प्रकार पृथक–पृथक दूसरों को भी अपनी–अपनी आत्मा प्रिय है। अतः स्वार्थ के लिए दूसरों की हिंसा न करें[18] बोधिसत्त्व ने भी पारमिताओं को पूर्ण करते हुए विभिन्न परिस्थितियों में वध करने वाले बैरियों के प्रति भी चित्त को द्वेषयुक्त नहीं किया, इसका प्रमाण कई जातकों में मिलता है।

'महासीलवजातक'[19] में पत्नी तथा अमात्य द्वारा प्रतिपक्षी राजा को बलुवाकर राज्य को ले लिए जाने पर उसे रोकने के लिए बोधिसत्त्व ने अमात्यों को हथियार छूने भी नहीं दिये, पुनः बोधिसत्त्व को शमशान में भूमि को खोदकर गले तक गाड़ दिए जाने पर भी, बोधिसत्त्व ने रंच मात्र भी स्वयं में द्वेष नहीं आने दिया, शवों का भक्षण करने आए श्रृंगालों ने बहुत परिश्रम से मिट्टी खोदकर उन्हें जीवित बाहर निकाला, तथा एक यक्ष की कृपा से अपने शयन कक्ष में आकर शय्या पर सोये अपने शत्रु को देखकर उस पर क्रोध न करते हुए परस्पर उसे मित्र बनाया।

बोधिसत्त्व ने सिर्फ मनुष्य के रूप में ही ऐसा नहीं किया, बल्कि पशु रूप में भी उन्होंने इसका पालन किया । " जब वह छदन्त नामक हाथी थे, नाभि में विषयुक्त बाण मारे जाने पर भी अपकारी व्याघ्र के प्रति चित्त को द्वेषयुक्त नहीं किया "[20] किसलिए, किस कारण मुझे मारा, यह किसका काम है। 'भदन्त मैं काशीराज की रानी द्वारा, तुम्हारे दाँत लाने के लिए भेजा

[16]अंगुत्तर निकाय 1/284.
[17]खुद्दक निकाय, 5/379.
[18]संयुक्त निकाय, 1/126.
[19]*जातक,* (प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 51, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941, पृ. 387.
[20]खुद्दक निकाय, 3:/375.

गया हूँ' ऐसा कहे जाने पर उसका मनोरथ पूर्ण करते हुए अपने सुंदर सुशोभित दन्तों को तोड़कर दे दिया, जिनसे छः रंगों की रश्मियाँ निकलती थी ।"[21] महाकपि के रूप में जिस पुरुष को उन्होंने पहाड़ी झरने में डूबने से बचाया था, उसी पुरुष द्वारा मारे जाने पर अश्रूपूर्ण नेत्रों से पुरुष को देखते हुए, बोधिसत्त्व ने पूछा 'भदन्त ! आप मेरे लिए अतिथि है, आपने भी ऐसा किया। हे दीर्घायु ! आपको तो दूसरों को रोकना चाहिए था।"[22] ऐसा कहा और अपने चित्त को दूषित न करते हुए, उस अपकारी पुरुष को भी सकुशल उसके लक्ष्य तक पहुँचा दिया।

यदि शास्ता द्वारा पूर्व आचरित गुणों का इस प्रकार निरीक्षण करने पर भी दीर्घकाल से क्लेशों का दास बने हुए व्यक्ति का प्रतिघ शान्त न हो, तो उसे उन सूत्रां का प्रत्यवेक्षण करना चाहिए, जिसमें अनादित्व का प्रतिपादन किया गया है, क्योंकि वहाँ कहा गया है, "भिक्षुओं, ऐसा कोई भी सुलभ नहीं है, जो पूर्वकाल में किसी न किसी जन्म में पुत्र–पुत्री न रहा हो, माता न रहा हो, और पिता न रहा हो"[23], पूर्वकाल में जो भाई – बहन, पुत्र–पुत्री न रहा हो, अतः उस व्यक्ति के बारे में, यों विचार करना चाहिए, "इसने अतीत काल में मेरी माता के रूप में दस महीने कुक्षि में वहन किया, मल, मूत्र, थूक, नाक का मल आदि को भी हरि चंदन के समान घृणा न करते हुए साफ किया, वक्ष स्थल पर क्रीड़ा कराते हुए, गोद में ढोते हुए पालन किया। पिता के रूप में अजपथ, शङ्कपथ आदि से व्यापार के निमित्त जाते हुए अपने जीवन की भी चिन्ता नहीं की, ऐसे युद्ध में जिसमें दोनों ओर की सेनाऐं व्यूह बनाकर खड़ी थीं, प्रवेश किया, नाव लेकर महासागर में कूद पड़े, अन्य भी दुष्कर कार्य करते हुए, बच्चे का पालन करना है, ऐसा सोचकर इन इन उपायों से धन कमाकर मेरा पालन किया एवं भाई– बहन, पुत्र–पुत्री के रूप में यह – यह उपकार किया, अतः उसके विषय में मन को द्वेषयुक्त करना मेरे लिए उचित नहीं है।"[24]

यदि इस प्रकार भी चित्त को शान्त करने में व्यक्ति समर्थ न हो, तो उसे मैत्री के गुणों का यों प्रत्यवेक्षण करना चाहिए, " मैत्री के ग्यारह लाभ सम्भव हैं। मैत्री का सेवन करने वाला सुखपूर्वक सोता है, सुख से जागता है, दुःस्वप्न नहीं देखता, मनुष्यों का प्रिय होता है, अमनुष्यों का प्रिय होता है, देवता उसकी रक्षा करते हैं, उस पर अग्नि, विष या शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता है, शीघ्र ही चित्त एकाग्र हो जाता है। मुख की कान्ति बढ़ती है, असम्मूढ़ होकर मरता है, उच्चतर (अवस्था) न पाकर भी ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है।"[25]

जो इस प्रकार भी चित्त शान्त न कर सके, उसे धातुओं के बारे में विचार करना चाहिए, " हे प्रव्रजिता ! यो क्रोध करते हुए तुम किस पर क्रोध करते हो? क्या केशों पर क्रोध करते हो या रोमों पर या नखों पर या जल, वायु, तेज आदि धातुओं पर क्रोध करते हो? अथवा पंचस्कन्ध, बारह आयतन, अट्ठारह धातुओं से सम्मिलित रूप से या वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान स्कन्ध

[21]सीलवनागराज *जातक, जातक,* (प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 72, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941, पृ. 460,
[22]खुद्दक निकाय, 3:1 / 384.
[23]संयुक्त निकाय, 2 / 620–62.
[24]*विसुद्धिमग्ग,* आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री. वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 162–163.
[25]*विसुद्धिमग्ग,* आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग) सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 163–164.

पर क्रोध करते हो अथवा चक्षु आयतन या मनोविज्ञान धातु पर क्रोध करते हो। यों धातुओं का पृथक–पृथक विवेचन करते समय आरे की नोक पर सरसों के दाने के समान या आकाश में चित्रकारी के समान क्रोध टिक नहीं पाता।"[26]

'पटिसम्भिदामग्ग'[27] में कहा गया है कि "सभी सत्व बैररहित, व्यापादरहित, व्याकुलरहित सुखपूर्वक जीवन यापन करें, सभी प्राणी, सभी भूत, सभी पुद्गल, सभी आत्मभाव सम्पन्न बैररहित पूर्ववत् जीवनयापन करें। इस प्रकार पाँच रूपों मे विभागरहित व्यापक मैत्रीचित्त विमुक्ति समझी जानी चाहिए।'[28]

मैत्री का पालन करने वाला न सिर्फ मनुष्यों का प्रिय होता है, बल्कि अमनुष्यों का भी प्रिय होता है। इस संदर्भ में "विशाखा स्थविर' की कहानी को उदाहरणस्वरूप देख जा सकता है। जब वे चितल पर्वत के विहार की ओर जा रहे थे, तब उन्हें पर्वत पर रहने वाले देवता ने हाथ फैलाकर रास्ता दिखाया। वे चितलपर्वत विहार जाकर वहाँ चार महीने रहने के बाद " भोर में चला जाऊँगा" – ऐसा सोचकर सो गये। चक्रमण कोंण पर स्थित 'माणिल वृक्ष' पर रहने वाला देवता सीढ़ी के फलक पर बैठकर रोने लगा । स्थविर ने पूछा– आप कौन हैं, भन्ते मैं मणिलिया हूँ, आपके जाने के कारण रो रहा हूँ । मेरे यहाँ रुकने से तुम्हारा क्या लाभ होगा ? " भन्ते ! आपके यहाँ रहने से अमनुष्य परस्पर मैत्रीपूर्वक रहते हैं" स्थविर ने यह कहकर कि यदि मेरे यहाँ रहने से तुम सब सुख से रह सकते हो, तो ठीक है। अगले चार महीने भी वहीं रहकर उन्होंने पुनः जाने का मन बनाया। देवता फिर से वैसे ही रोया । इस प्रकार स्थविर वहीं रहते हुए परिनिर्वृत हुए। इस प्रकार मैत्री – विहारी भिक्षु अमनुष्यों को भी प्रिय होता है।"[29]

करुणा भावना :– किसी व्यक्ति को विपन्नावस्था में देखकर व्यक्ति के हृदय में जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, वही करुणा कहलाता है। विभंग में कहा गया है, कि किसी दुर्गति प्राप्त पुरुष को देखकर उस पर करुणा करना ही 'करुणा – भावना' है। करुणा की भावना से सम्पन्न व्यक्ति दूसरे के दुखों को दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार करुणा के मूल में परदुःख निवारण की भावना रहती है। जो परोक्षरूप से लोक कल्याण का निमित्त बनती है। करुणा की सम्यक् निष्पत्ति से हिसा का उपशमन होता है।

करुणा की भावना के अभिलाषी को करुणा के गुणों का प्रत्यवेक्षण करते हुए करुणा भावना का आरम्भ करना चाहिए । " जिस प्रकार दुखी व्यक्ति को देखकर करुणा का उदय होता है, उसी प्रकार सुखी व्यक्ति के लिए भी करुणा उत्पन्न करनी चाहिए, क्योंकि हो सकता है, वह व्यक्ति अभी सुखों का भोग कर रहा हो, परन्तु एक भी पुरुष कर्म न करने से कुछ ही समय बाद वह अकथनीय दुख एवं बैमनस्य का अनुभव करेगा।"[30] इसी प्रकार क्रमशः बढ़ते हुए क्रम में व्यक्ति पर, फिर मध्यस्थ पर, फिर बैरी पर, करुणा करनी चाहिए। यदि उपरोक्त कथित बैरी के प्रति द्वेष उत्पन्न हो तो उसे मैत्री के प्रसंग में

[26] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती 2002 पृ. 164–165.
[27] यह सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय का बारहवाँ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।
[28] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्ध भारती 2002 पृ. 149–150.
[29] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 172–174.
[30] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 176–177.

भावना करनी चाहिए, एवं जो यहाँ कुशल करने वाला होता है, उसके प्रति भी यह देखकर या सुनकर कि जाति, रोग, भोग, व्यसन आदि में से किसी न किसी व्यसन से युक्त है, अथवा इसके अभाव में भी संसार रूपी दुख का अतिक्रमण तो नहीं ही किया है।

" यह दुखी ही है। इस प्रकार सर्वथा करुणा करें।

क्रम से पहले बैरी, फिर प्रिय व्यक्ति, फिर सखा पर।"[31]

करुणा को 'सीलवनागराज जातक'[32] में उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। जब बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में हाथी योनि में पैदा हुए। उनका वर्ण चाँदी की तरह श्वेत था। आँखें मणि के सदृश थीं और चाँदी के समान दन्त थे। शीलवान होने के कारण उनका नाम सीलव नागराज पड़ा। उस समय वाराणसी निवासी अजीविका के लिए चीजें खोजता हुआ दिशा भ्रम हो जाने से रास्ता भूलकर रोने लगा। बोधिसत्त्व उसका रोना सुन करुणा भाव से प्रेरित हो उसके पास जाकर उसके रोने का कारण जान कर उसे अपने निवास स्थान पर ले गए। कुछ दिन बाद उसे अपनी पीठ पर बिठा कर उसे उसके निवास स्थान पर पहुँचाया।

उसी व्यक्ति ने जीविका के लिए निर्मम हो उनका चाँदी – दन्त माँग लिया । बोधिसत्त्व गौ की तरह पाँव सिकोड़ कर बैठ गए और करुणावश उसे आरे से काट कर दन्त ले जाने का आग्रह किया। वह व्यक्ति उसे बेचकर धन समाप्त हो जाने पर, पुनः बोधिसत्त्व से मूल दन्त माँग ले गया। इस प्रकार तेज आरी से माँस हटा कर, मूल दाढ़े, काटे जाने पर भी बोधिसत्त्व ने करुणावश ही सारी पीड़ा को सहन कर लिया। इस उदाहरण से उपरोक्त वर्णित करुणा के सम्पूर्ण स्वरूप को समझा जा सकता है।

मुदिता भावना :– मुदिता का अर्थ है प्रसन्नता। जीवन मार्ग में किसी की भौतिक या आध्यात्मिक उपलब्धियों को देखकर प्रसन्न होना ही मुदिता है । " मुदिता की भावना करने वाला ईर्ष्या, द्वेष नहीं करता। बल्कि सभी प्राणियों के उत्कर्ष से उसे उसी प्रकार प्रसन्नता होती है, जैसा संसारियों को अपने प्रिय व्यक्ति के उत्कर्ष को देखकर । विभंग में कहा गया है, कि एक प्रिय एवं अनुकूल व्यक्ति को देखकर जिस प्रकार प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति उत्पन्न आहलाद का नाम मुदिता भावना है।"[33] मुदिता में 'निज', 'पर' की भावना समाप्त हो जाती है, और साधक को सभी अपने प्रिय दिखाई देते हैं, मुदिता भावना की निष्पत्ति से ' अरति' का उपशम होता है। यदि कोई घनिष्ट मित्र या प्रिय व्यक्ति बीते समय में सुखी रहा हो, किन्तु इस समय दुर्गति ग्रस्त भाग्यहीन हो, तो भी उसके अतीत सुखी भाव का स्मरण करते हुए मुदिता

[31] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 177–178.
[32] *जातक*, (प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 72, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941, पृ. 460.
[33] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री. वारणसी : बौद्धभारती, 2002 पृ. 178–179.

उत्पन्न करनी चाहिए। इस प्रकार प्रिय व्यक्ति के बाद मध्यस्थ के प्रति फिर बैरी के प्रति आदि क्रम से मुदिता भावना करनी चाहिए ।

मुदिता के स्वरूप को जानने के लिए मय्हक जातक[34] को लिया जा सकता है। प्रसन्नता का महात्म्य बताते हुए बोधिसत्त्व कहते हैं कि – " दान देने से पूर्व दान देते समय और दान देकर प्रसन्नचित्त रहना चाहिए ।" इस उपदेश के लिए उन्होंने उदाहरणस्वरूप वाराणसी सेठ की कथा कही है जो आश्रद्धावान और कंजूस था। अपार संपत्ति रहते हुए भी पुत्रहीन तथा सुख से वंचित था । कारण पूछने पर शास्ता ने बताया कि उस ने शास्ता को दान में स्वादिष्ट भोजन तो दिया परन्तु दानपत्र में भोजन देते समय उसका मन प्रसन्नचित्त न रहा । वह पीछे अनुताप करता रहा। इस प्रकार प्रत्येक बुद्ध को दान देने के कारण उसने बहुत धन प्राप्त तो किया परन्तु चेतना पूर्ण रूप से पवित्र न रख सकने के कारण धन का उपभोग नहीं कर सका।

मुदिता के संदर्भ में एक अन्य जातक कथा का भी उदाहरण के रूप में बोधिसत्त्व ने उपयोग किया है। इस जातक में एक बालक द्वारा यह कहे जाने पर कि वो बोधिसत्त्व का पिता है और बोधिसत्त्व के द्वारा इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर बोधिसत्त्व ने उसका कारण बताया कि जिस आदमी पर मंन ठहर जाता है अथवा चित्त प्रसन्न होता है तथा जिसे पहले न देखा गया हो पर फिर भी उस पर विश्वास कर लिया जाता है। पुनः किसी अन्य के प्रति वैसी मुदिता वैसा विश्वास या स्नेह उत्पन्न नहीं होता, इसका कारण यह है कि पूर्व जन्म में चाहे माता–पिता, भाई–बहन, पति – भार्या, चाहे सहायक या मित्र हो कर जो कोई किसी के साथ एक स्थान पर रहता है, उससे यह दूसरे जन्म में भी वह स्नेह नहीं छूटता यही कारण है कि स्वतः मदिता की उत्पत्ति हो जाती है। पूर्व जन्म का संदर्भ मान कर ही प्रत्येक के लिए चित्त में प्रसन्नता रखनी चाहिए।

उपेक्षा भावना :– समभाव या उदासीनता की भावना 'उपेक्षा– भावना' है। अज्ञान के कारण सांसारिक कार्यों के प्रवृत्त, मानवों के प्रति घृणा की भावना न रखकर उदासीनता रखना ही उपेक्षा है। अज्ञान के कारण किसी के दोषों से उदासीन होना तथा दोषों के निवारण के लिए यथा सम्भव प्रयास करना ही उपेक्षा है। इससे सांसारिक व्यक्तियों और वस्तुओं की अनुकूलता व प्रतिकूलता का भाव ही समाप्त हो जाता है, जिससे इस ज्ञान का उदय होता है, कि मानव अपने कर्मों के वचन में बँधा है, कर्मों के अनुसार ही वह सुख या दुख प्राप्त करता है। उपेक्षा सम्यक् निष्पत्ति से हिंसा और अनुनय दोनों का उपशमन होता है।

मनुष्य के अन्तरवैयिक्तक सम्बन्धों की सुरक्षा व दृढ़ता के लिए 'उपेक्षा' का किस प्रकार व्यवहार किया जाता है? इस बोधिसत्त्व ने 'पब्वतूपत्थार जातक'[35] के माध्यम से समझाया है। आपसी कलेशों के उपशमन के लिए व्यक्ति को कई दोषों के प्रति किस प्रकार उपेक्षावान होकर समभाव रखना पड़ता है, यह इस कथा से समझ सकते हैं। पूर्व समय में बोधिसत्त्व वाराणसी राजा के

[34] *जातक,* (तृतीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 390, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1971, पृ. 448.
[35] *जातक,* (द्वितीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद), सं. 195, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1985, पृ. 319.

यहाँ धर्मानुशासक हुए। राजा के आमात्य द्वारा रानिवास दूषित करने पर तथा राजा द्वारा इसका निदान बोधिसत्त्व से पूछे जाने पर बोधिसत्त्व ने कहा, " अपने उपकारी सेवक के प्रति तथा प्रिया के प्रति बुरा व्यवहार नहीं किया जा सकता। उसके प्रति उपेक्षावान होना ही उचित है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार महानदी पर सभी प्राणी जल पीते हैं। उससे नदी अनदी नहीं हो जाती। दो पैरों वाले, चार पैरों वाले, सर्प मनुष्य आदि सभी प्यासे पानी पीते हैं। उससे नदी जूठी नहीं होती। सबके लिए साधारण होने से जिस प्रकार पानी दूषित नहीं होता उसी प्रकार स्त्री भी अपने पति के अतिरिक्त अन्य से सहवास करने मात्र से अ– स्त्री नहीं हो जाती और न ही जूठी होती है।

स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी मान्यताओं का खण्डन तथा स्त्री के प्रति निष्पक्ष व समभाव रखने का यह उपदेश, आज के युग में भी प्रासांगिक है। स्त्री–पुरुष के संबंधों के विवाद का उत्तम उपाय है।

"जैसे किसी ऐसे व्यक्ति को जो न तो प्रिय हो न अप्रिय देखकर उपेक्षा होती है, वैसे ही सभी सत्वों के प्रति उपेक्षा करनी चाहिए"[36]इसमें भी पहले मध्यस्थ व्यक्ति के प्रति उपेक्षा उत्पन्न करनी चाहिए, फिर प्रिय व्यक्ति के प्रति तब घनिष्ट मित्र के प्रति, फिर बैरी के प्रति तथा स्वयं के प्रति। सभी के प्रति मध्यस्थता के रूप में रहने वाली पारमिता ' उपेक्षा' है।

इन चारों ब्रह्मविहारों का साधारण प्रयोजन विपश्यना सुख, व्यापाद आदि का नाश उनका अपना–अपना प्रयोजन है। क्योंकि " मैत्री का प्रयोजन व्यापाद का नाश है, जबकि अन्यों अर्थात् करुणा, मुदिता, उपेक्षा का प्रयोजन विहिंसा, अरति एवं राग का नाश है। "[37] जहाँ खड़ा "जहाँ इस प्रकार की भावना करने वाला जायेगा, सुविधा पूर्वक जाएगा, होगा, सुविधापूर्वक खड़ा होगा, जहाँ बैठेगा सुखपूर्वक बैठेगा, जहाँ शयन करेगा, सुखपूर्वक शयन करेगा।"[38] "हलिदवसनसुत्त' में इन्हें 'परमशुभ' आदि भाव से विशेषित बतलाया गया है। जैसा कि कहा गया है– "भिक्षुओं मैं शुभ को मैत्री चित्त – विमुक्ति का चरम कहता हूँ। मैं आकाशनन्त्याय को करुणा चित्त–विमुक्ति का चरम कहता हूँ। भिक्षुओं विज्ञानानत्यायतन को मुदिता चित्त विमक्ति का चरम कहा हूँ। भिक्षुओं में अकिज्जन्यायन को उपेक्षा चित्त – विमुक्ति का चरम कहा हूँ।"[39]

इस प्रकार शुभ के आधार के अतिरिक्त यही ब्रह्मविहार दान आदि सर्वकल्याण धर्मो को पूर्णता तक पहुँचाने वाला है। इसका पालन करने वाले शील की परिपूर्णता के लिए त्याग का अभ्यास करते हैं, सत्वों के हिताहित के विषय में मिथ्याधारणा से बचने के लिए प्रज्ञा को परिशुद्ध करते हैं। सत्वों के हित सुख के लिए सर्वदा प्रयासरत् रहते हैं। उत्तम वीर्य के कारण वीरत्व को पाकर भी सत्वों के अपराधों को क्षमा कर देते हैं। अचल मैत्री के कारण दिए गए वचनों को तोड़ते नहीं हैं, और उपेक्षा

[36] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 180.
[37] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 182–183.
[38] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 190–191.
[39] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002, पृ. 190–192.

युक्त होने से प्रति उपकार नहीं चाहते हैं।"[40] इस प्रकार दान, शील आदि पारमिताओं को पूरा कर सब कल्याण करने वाले धर्मों को पूर्णता का लाभ कराने वाले हैं।

व्यक्ति के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों का ज्ञान कराने तथा उसके संबंधों की परिशुद्धि के लिए ब्रह्मविहारों की उपयोगिता बताना जातक साहित्य की मौलिक देन है, कई उदाहरणों में आज भी इसकी प्रासंगिकता को देखा जा सकता है। यदि व्यक्तियों के बीच आपसी संबंधों का आधार ब्रह्मविहार को बनाया जाए, तो समाज में व्याप्त विषमताओं, अनैतिक आचरण तथा अमानवीय कृत्यों व दुराचरणों से बचा जा सकता है। यद्यपि इन भावनाओं के लिए कोई वैज्ञानिक या ठोस तार्किक आधार प्रस्तुत नहीं किया जा सकता तथापि इसके आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों की अवहेलना भी नहीं की जा सकती है। इसे पर्यावरण के आध्यात्मिक संदर्भ में समझा जा सकता है। जिससे निःसंदेह मानवीय मूल्यों का संरक्षण अन्तरवैयिक्त संबंधों को स्वस्थ व सुरक्षित रखने के संदर्भ में हो सकेगा।

[40] *विसुद्धिमग्ग*, आचार्य बुद्धघोष (हिन्दी अनुवाद द्वितीय भाग), सं. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, वारणसी : बौद्धभारती, 2002 पृ. 192–193.